Saarth E-Journal

Saarth E-Journal of Research

E-mail : sarthejournal@gmail.com
www.sarthejournal.com

ISSN NO : 2395-339X
Peer Reviewed
Vol.8 No.09

Impact Factor
Quarterly
Jan-Fb-March2023

समकालीन उपन्यासों में पर्यावरणीय विमर्श

नलिना आहिर

सारांश:

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है। पर्यावरण चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है...

प्रसिद्ध कवि रूपेश कन्नौजिया की पंक्तियां हैं-

प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,
गुलाबी सुबह से माथा चूम कर हंसते हुए उठाती है
गर्म दोपहर में ऊर्जा भर के दिन खुशहाल बनाती है,
रात की चादर में सितारे जड़कर मीठी नींद सुलाती है,
प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,

कुछ उपन्यासकारों ने पर्यावरण चिंतन को केंद्र में रखकर कई उपन्यासों का सृजन किया और पर्यावरण जागरूकता से संबंधित आधुनिक प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया है और कहा कि प्रकृति ने हमें जीवित रहने के लिए हर एक सुविधा तथा सहुलियत प्रदान की है तो अब हमारा कर्तव्य है कि हर व्यक्ति अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी को समझे और पर्यावरण को स्वस्थ बनाने हेतु कारगर प्रयास करने कि ओर अन्मुख हो।

चाबिरुप शब्द: प्रकृति, पर्यावरण, हिन्दी उपन्यास, पर्यावरणीय विमर्श, भूमंडलीकरण।

प्रस्तावना:

भारतीय संस्कृति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ पर्यावरण संरक्षण का भाव अति पुराकाल में भी मौजूद था, पर उसका स्वरूप भिन्न था। उस काल में कोई राष्ट्रीय वन नीति या पर्यावरण पर काम करनेवाली संस्थाएँ नहीं थीं। पर्यावरण का संरक्षण हमारे नियमित क्रिया-कलापों से ही जुड़ा हुआ था। इसी वज़ह से वेदों से लेकर कालिदास, दाण्डी, पंत, प्रसाद आदि तक सभी के काव्य में इसका व्यापक वर्णन किया गया है। भारतीय दर्शन यह मानता है कि इस देह की रचना पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटकों- पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से ही हुई है। समुद्र मंथन से वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्पवृक्ष का निकलना, देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना, इसी तरह कामधेनु और ऐरावत हाथी का संरक्षण इसके उदाहरण हैं। कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरुआत का लौकिक पक्ष यही है कि जन सामान्य मिट्टी, पर्वत, वृक्ष एवं वनस्पति का आदर करना सीखें। श्रीकृष्ण ने स्वयं को ऋतुस्वरूप, वृक्ष स्वरूप, नदीस्वरूप एवं पर्वतस्वरूप कहकर इनके महत्व को रेखांकित किया है। हमारी धरती माता वर्तमान में पर्यावरण संबंधी चिंताओं का सामना कर रही है। ग्लोबल वार्मिंग, एसिड रेन, वायु प्रदूषण, शहरी फैलाव, अपशिष्ट निपटान, ओज़ोन परत की कमी, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन जैसी कई पर्यावरणीय समस्याएँ हैं जो इस ग्रह पर प्रत्येक मानव, जीवजन्तु और राष्ट्र को प्रभावित करतीं हैं। भारतीय संस्कृति में अग्नि, नदियाँ, वृक्ष, सूर्य, पशु-पक्षी आदि अनेक प्राकृतिक घटकों को पूजनीय माना जाता रहा है। यूरोप के आधिपत्यवाद की अपेक्षा भारतीय संस्कृति प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण क़दमताल करती हुई आगे बढ़ी है। अधिकतर भारतीय पर्व व त्यौहार भी प्रकृति से जुड़े हुए हैं, चाहे वे बैसाखी हो या बसंत पंचमी। पर्यावरण यहाँ जीवन की रीढ़ माना जाता है। टैगोर ने लिखा है- वन व प्राकृतिक वस्तुएँ मानव-जीवन को एक निश्चित दिशा देते थे। मानव प्राकृतिक जीवन की वृद्धि के साथ निरंतर संपर्क में था, वह अपनी चेतना का विकास आस-पास की भूमि से करता था। उसने विश्व की आत्मा व मानव की आत्मा के बीच के संबंध को महसूस किया। मानव और प्रकृति के बीच इस तारतम्यता ने पर्यावरण को आत्मार्पित करने की शांतिपूर्ण व अपेक्षाकृत अच्छे परिस्थितियों अच्छे तरीक़ों को जन्म दिया पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। भारतीयता का अर्थ ही है- हरी-भरी वसुंधरा और उसमें लहलहाते फूल, गरजते बादल, नाचते मोर और कल-कल बहती नदियाँ। यहाँ तक कि भारतीय संस्कृति में वृक्षों और लताओं का देवतुल्य माना गया है। जहाँ अनादिकाल से इस प्रार्थना की गूँज होती रही है- 'हे पृथ्वी माता तुम्हारे वन हमें आनंद और उत्साह से भर दें।' पेड़-पौधों को सजीव और जीवंत मानने का प्रमाण भारतीय वाङ्मय में विद्यमान है।

“वृक्ष हमारे लिए जमीन पर चुपचाप खड़ी रहने वाली हरी चीज कभी नहीं रहे ये हमारे जीवन में रचे बसे हैं। हमने उन्हें अपनी कथा, कहानियों, लोकगीतों और नाना कलाओं में संजाये रखा है।“ भारतीय सभ्यता संस्कृतिका लंबा दौर प्रकृति की पावन गोद में विकसित हुयाक है

जिसमें शुद्ध वायु, खुले आकाश अखंड हरीतिया एवं निर्मल जलधारा के सानिध्य में हमारी चिंतनधारा को अनुपठित करने वाले गौरव ग्रंथ रचे गए।

पर्यावरण शब्द का अर्थ:

पर्यावरण शब्द एवं उसका अर्थ अत्यंत व्यापक है जिस में सारा ब्रहमाण्ड ही समा जाता है। 'परि' अर्थात हमारे चारों ओर का आवरण। हम सभी तथा हमारा यह संसार आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि न्तठा वन वृक्ष, नदी, पहाड़, समुद्र एवं पशु पक्षी से आवृत है। प्रकृति के इन पाँच तत्वों से मिलकर ही मानव शरीर की रचना हुई है। तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा है-

छितिजल पावक गगन समीरा।
पाँच रचित अति अधम सरीरा।

साहित्य में पर्यावरण:

हमारे साहित्य में भी पर्यावरण की चिंता केंद्रबिंदु में रही है। प्रेमचंद जैसे युग प्रवर्तक साहित्यकार के साहित्य मे भी पर्यावरणीय संवेदना के दर्शन होते है "*पूस की रात*" कहानी में अपने 'प्राकृतिक परिवेश का पर्दा खोलते हैं- "रात को शीत ने धधकना शुरू किया।" प्रेमचंद ने '*दो बैलों की कथा*' के माध्यम से प्रकृति के उदात्त संवेदनात्मक पक्ष को उभारा है। यात्रा वृत्तांतों के अतंर्गत निर्मल वर्मा के "*चीड़ों पर चाँदनी*" अज्ञेय के "*अरे यायावर रहेगा याद*" महत्वपूर्ण रचनाएँ है। निर्मल वर्मा के यात्रा वृतांत प्रकृति के साथ गहरे संवेदनशील रिश्तों का खाका प्रस्तुत करते हैं। 'अज्ञेय' ने 'अरे यायावर रहेगा याद?' में प्रकृति का स्थूल वर्णन न करके, प्रकृति के स्पंदक का सूक्ष्म अंकन किया है। प्रकृति के छिपे हुए इतने सौंदर्य स्तरों की खोज की है जो उनकी बौधिकता का ही नहीं उनकी रागात्मकता का भी परिचायक है। अस्तित्वमूलक एकता (Existential Oneness) का विचार महात्मा गाँधी के चिंतन का प्रस्थान बिन्दु है। यही प्रस्थान बिंदु वैज्ञानिक नियम के रूप में अहिंसा को अभिव्यक्त करता है। गाँधीजी के पर्यावरण प्रकृति संबंधी विचार ऊपरी तौर पर सहज एवं सरल प्रतीत होते हों परन्तु उनमें विकास और पर्यावरण, गाँव और शहर जैसे कई विमर्श अन्तर्भूत हैं। इन्हें नजरअंदाज करना गाँधीजी के पर्यावरण/प्रकृति संबंधी विचारों को एकांगी बनाना होगा। पर्यावरणवाद की सम्पूर्ण अवधारणाएँ प्रकृति को मनुष्य द्वारा दिये घावों पर निर्भर हैं। प्रकृति को इतने घाव दिये जा चुके हैं कि अब उन्हें भर पाने में हमें अपने असामर्थ्य का बोध होने लगा है। जैसे-जैसे पूँजी का वर्चस्व और निजी संपत्ति की प्रवृत्ति बढ़ती गई प्राकृतिक पर्यावरण दूषित होता गया. यह एक खुली हुई स्पष्ट और सरलसहज बात है। भौतिकशास्त्री और ब्रहमांडविद् स्टीफन हॉकिंग ने यहाँ तक कह दिया कि अगले सौ वर्षों के पश्चात हमें दूसरी पृथ्वी की ज़रूरत होगी।

चूकी साहित्य समाज का दर्पण है अतः पर्यावरण की कई समस्याओं को लेकर साहित्य भी अछूता नहीं रह सकता। बढ़ते औद्योगिकीकरण और जनसंख्या दबाव और संशाधनों की पूर्ति के लिए होने वाले खनन ने जंगलों को काटना शुरू कर दिया। इन सभी

समस्याओं को लेकर पिछले दो दशको में कई उपन्यास हमारे सामने आये। जीनमे से कुछ उपन्यासों की बात करे तो *'कठगुलाब'* (१९९६) मृदुला गर्ग *'एक ब्रेक के बाद'* (२००८) अलका सरावगी, *'रह गयी दिशाएँ इसी पार'* (२०११) संजीव, *'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ'* (२०१२) महुआ मांझी, *'ग्लोबल गाँव का देवता'* (२००९) रणेन्द्र, *'गायब होता देश'* (२०१४) आदि प्रमुख है।

इन उपन्यासों में परिस्थिति की संकट और स्थानीय लोगो की समस्याओं का आदिवासी जीवन पर प्रभाव, खनन से उत्पन्न हुए विकरण के खतरे, ग्लोबल वार्मिंग की समस्या, विस्थापन, वन अधिकारों का उल्लंघन, भूमि अधिग्रहण जैसी समस्याओं पर केन्द्रित है। यह उपन्यास जंगलों में रहने वाले लोगो की जीवन संस्कृति और पर्यावरण की समस्याओं से रूबरू कराते है। झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा में खनन कपनियों द्वारा मूल निवासियों के साथ व्यवहार और उनका विरोध इसके उदाहरण है।

निष्कर्ष:

हिन्दी साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को प्रकृति के सौदारी चित्रण व मानवीकरण से लेकर पर्यावरण प्रदूषण व अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर चिंतन किया गया है। हिन्दी साहित्य मानव की प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर उसके उचित उपयोग की संस्तुति करता है। इसीलिए वह मनुष्य को प्रकृति व पर्यावरण के प्रति अनुराग करना सिखाता है जिससे जन-जीवन में प्रकाश विद्यमान रह सके। आज अपने भोग एव सुख की प्राप्ति के लिए हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, इसका खामियाजा हमें तो भुगतना पड़ेगा ही, हमारी भावी पीढ़ी इससे और ज्यादा नुकसान झेलेगी। प्रकृति अपना बदली जरूर लेगी। आज असमय बारिस, बाढ़, भूकम्प, सुनामी केवल प्राकृतिक घटना न होकर मनुष्य सभ्यता के लिए भारी चेतावनी है। अगर आज भी हम नहीं सुधरे तो हमें भविष्य में अपना सब कुछ खोने के लिए तैयार रहना होगा। आज के कुछ रचनाकार अपने इस दायित्व को समझ रहे हैं और अपनी कहानियों के माध्यम से पर्यावरण चिंता को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, किन्तु सच तो यह है कि अभी भी पर्यावरणीय समस्या केवल समस्या बनी हुई है विमर्श का रूप नहीं ले पाया है। अतः जरूरत है कि पर्यावरणीय विमर्श पर अधिक से अधिक रचनाएँ आए ताकि सामाजिक क्रांति लाई जा सके।

संदर्भ सूची:

1) रामचरितमानस, तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर।

2) रह गई दिशा इसी पार, २०११, संजीव राजकमल प्रकाशन।

3) करंग घोड़ा नीलकंठ हुआ, २०१२, महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन।

4) समकालीन भारतीय साहित्य, प्रो॰ राम, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-११।

5) रणेन्द्र, २००९, ग्लोबल गाँव का देवता, ज्ञानपीथ प्रकाशन, दिल्ली।

चातक गोविंद, २०००, पर्यावरण परंपरा और अपसंस्कृति, तेज प्रकाशन, नई दिल्ली।

नलिना आहिर